चौराहे पर कृष्ण

ध्रुवदेव मिश्र पाषाण

प्रतिवाद प्रकाशन
1/4, पी० के० राय चौधरी सेकण्ड बाई लेन,
धो० गार्डेन, हवड़ा-711103

चौराहे पर कृष्ण
(एक लम्बी कविता)

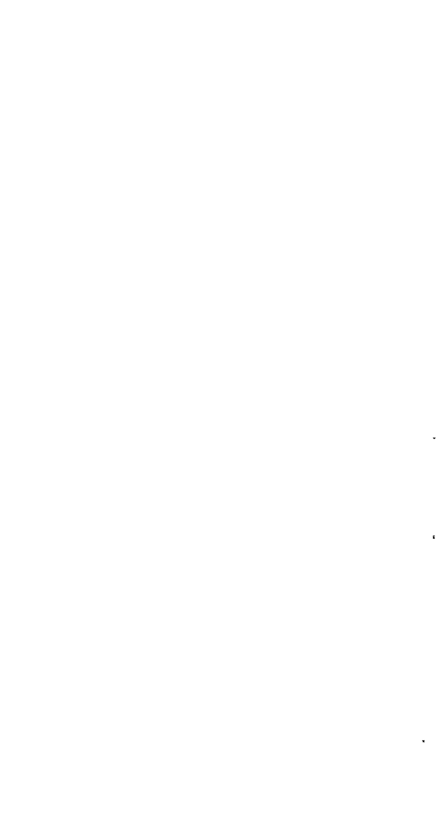
प्रथम संस्करण : 1993

प्रकाशक : प्रतिवाद प्रकाशन
1/4, पी० के० राय चौधरी सेकण्ड बाई
बी० गार्डेन, हवड़ा-711103

मुद्रक : विष्णु गोस्वामी
कृष्णा प्रिन्टिंग वर्क्स
18, गोविन्द बनर्जी लेन,
(बांधाघाट) सलकिया, हवड़ा-711106

आवरण : रघुनाथ मुखर्जी

मूल्य : तीस रुपये.



चौराहे पर कृष्ण

(क) पूर्व पक्ष

(ख) उत्तर पक्ष

जंगल कटे
खेत बने
गाँव और
शहर बसे
लोगों को
लोगों ने लूटा
लोक - लोक
लोग बँटे

कई पगडण्डियाँ
गाँवों से फूटीं
शहरों से जुड़ गईं
सड़कों को काटती
सड़कें कटीं
जहाँ - तहाँ मुड़ गईं

खंदक और खाइयाँ
नदियाँ और घाटियाँ
पाँव - पाँव जुड़ीं
राह में
बिछुड़ गईं
आए और
विदा हुए
पर्वत पठार कटे

तनते रहे
तंत्रों के तंतुजाल
होते रहे
अनगिनत
आग और पानी के आक्रमण
आदमी के स्वप्न
रक्त और कीचड़ में
सनते रहे
उजड़ते रहे दीन-हीन
जरासंध-कंस के
कारागार वनते रहे
उभरते-भहरते रहे
संवंधों के समीकरण

गोकुल की धूल से
कुरुक्षेत्र की माटी तक
लुढ़कते और लड़ते हुए
लगातार चलते हुए
मोड़-मोड़ वढ़ते हुए
पहुँचे हम चौराहे पर
व्यक्ति का विराट में
करते रूपान्तरण कृष्ण तक
उपस्थित हुआ संक्रमण



किरण - किरण
खिलते हुए कमल दिखे
लहराते हाथ दिखे
उमड़ते प्रवाह और
विद्रोही पाँव दिखे

भाड़ के हम नहीं
भगवानों से छली गई
भीड़ हमें
कह सकते हो तुम
तुम पर भरोसा है
परंतप
विद्रोही ओ !

तुमने
दैव और दानव की मार खा चीखती
हर भीड़ को
सेना का अनुशासन
मनुष्यता का बल दिया
युद्ध का युद्ध
और
कौशल का
कौशल से उत्तर दिया

कारा में
जन्म लिया

किरण - किरण
खिलते हुए कमल दिखे
लहराते हाथ दिखे
उमड़ते प्रवाह और
विद्रोही पाँव दिखे

भाड़ के हम नहीं
भगवानों से छली गई
भीड़ हमें
कह सकते हो तुम
तुम पर भरोसा है
परंतप
विद्रोही ओ !

तुमने
दैव और दानव की मार खा चीखती
हर भीड़ को
सेना का अनुशासन
मनुष्यता का बल दिया
युद्ध का युद्ध
और
कौशल का
कौशल से उत्तर दिया

कारा में
जन्म लिया

चरवाहों की लाठी
और कम्बल से
कृषकों के हल
बैलगाड़ी के पहियों से
दीक्षा प्रतिवाद की देते हुए
लोगों को साथ ले
अधिनायक का इन्द्रजाल
तार-तार करते हुए
आततायी कंस को
लोक से हटाए तुम
आत्मजयी योद्धा हे !

नर थे
नरोत्तम हुए
गोकुल की गलियों से
मथुरा की सड़कों तक
सब को चमत्कृत कर
सत्ता को पराभूत
विस्मित कर
सिद्ध सर्वोत्तम हुए
जीवन से
विमुख कभी हुए नहीं
भोगों के बीच निरासक्त
कर्मरत योगी तुम

जनगण को साथ ले
द्वारिका बसाई

षड्यंत्रों के जाल में
छिना गया
जिनका जीने का जरिया
उनके शुभ सहचर थे

न्यायहीन सत्ता
और
जर्जर व्यवस्था की
चुनौती स्वीकार की

छूटी थी बाँसुरी
छूटे पनघट
छूट गए मधुवन
बिसारे थे
मक्खन से मुलायम
दूध से धुले दिन
खोए थे
सांवली रातों के सुर
कहाँ था
महारास रचाने का अवसर!
पूनों की रातों पर
अमावस का पहरा था

शांत सौम्य
संदीपन का गुरुकुल

माई की
शिक्षाव्यवस्था की
जड़ता का
केन्द्र बना
सम्मुख था
कुरुकुल

युधिष्ठिर ने
युद्ध नहीं
आश्रय सिर्फ माँगा
दुर्योधन ने
सत्य, शील
न्याय, विनय
आश्रय ठुकराया

द्रोणाचार्य गुरु स्वयं
फिर भी
असमर्थ रहे
राजनीति
भेद के
पास पाप देखते रहे

कुरुकुल के महामंत्री
विदुर विदुषक

प्रतिज्ञा से अपनी
पितामह हुए कीलित
लांछित गुरुत्व
राजगुरु द्रोण का
कुंठित अहंकार
एकाकी कर्ण का
ईर्ष्या से दग्ध
अश्वत्थामा का पुत्रपद

अधिकारों की लिप्सा
और
पुत्रमोह का
चरम
पतित धृतराष्ट्र में

त्रिभुज की भुजाएँ
छिटकीं
आस्था का सेतु
घुना हुआ

नीति अलग
शक्ति अलग
सत्ता का केन्द्र अलग
असंभव हुआ संतुलन

खिन्न बहुत
लौटे कृष्ण

चिताओं में
एक चिता
सुभद्रा के पुत्र की
दग्ध हुआ
भारत - भविष्य युवा
अन्तस में झुलसे
तुम स्वयं योगिराज !

युद्धनीति खण्डित
नैतिकता लुण्ठित
लज्जित थे द्रोण
अपनी ही जीत पर
आत्मघात लगता उन्हें
दैन्यविवश ज्ञान का
स्वाधीनता - समर्पण

शरशैय्या पर पड़े हुए
कुरुकुल के मानदण्ड
[illegible]
बिलख - बिलख रोए
अपमानजनक अनीति पर

[illegible] [illegible] की
अहंकार की मदमाती
[illegible] हँसी कौरव की
[illegible] हुई [illegible]
जो [illegible] [illegible] [illegible]

अपना ही पौरुष
दुर्योधन का बँधुआ बना लगता
हत्या अभिमन्यु की वीरों का कर्म नहीं
वधिकों का पाप उसे लगती

क्षुब्ध-क्रुद्ध सागर-सा उमड़ा
अन्तस्थल तुम्हारा
तैरा था प्रलय-भाव आँखों में
किंतु सम्मुख था
लक्ष्य बड़ा
लड़ना था शेष अभी
देवों और
दनुजों के सश्रय से
गढ़ना था स्वयं तुम्हें
तंत्र नया

जयद्रथ का वध हुआ
द्रोण, कर्ण, शल्य
शकुनी समाप्त हुए
अनुज सभी
अन्यायी की मृत्यु मरे
बिखर गया सैन्यबल
अहंकार साथ किंतु
लगा रहा दुर्योधन के
जीवन की संध्या तक
पत्थर और पानी का भेद कभी
समझ नहीं पाया वह

अविचलित भाव से
साधते रहे युद्धयोग
अर्जुन के प्राणसखा
सारथी
श्रेष्ठतम महारथी
धर्म के सिंहासन पर
न्याय के अभिषेक तक



आततायी द्रोणपुत्र
नाश पर उतारू
छोड़ा ब्रह्मास्त्र
निरुपाय स्वयं हो गया
उद्यत हुआ पार्थ
विवश हो
माध्यम बन जाने को
अंतिम विध्वंस का

हतप्रभ थे व्यास
संस्कृति का संकट
उनके ही आश्रम में
उपस्थित परीक्षण

सृजनवती मेधा
कसौटी पर पहुँची

"शस्त्रों से घिरता हुआ आदमी
शस्त्रों से मुक्त हो
या
उनकी खुराक बने ?"

चिंतित था
शास्त्रों का सर्जक मन
विप्लव नहीं
विनाश था सामने

चुनौती तुमने स्वीकार की
दाँव पर लगने दिया
उत्तरा का गर्भ
समूचे की रक्षा में
संकट में पड़ने दिया
प्रिय जन का अंश

आया जब
उचित वक्त
परीक्षित को
प्राण दिए
टूटने से बच गई
पाण्डवों की शृंखला



अधूरे नहीं रह गए अभीप्सित
कृष्णा और भीम के
प्रतिशोध थे पूरे हुए
दिशाओं में छाई किंतु
संकल्पों की रिक्तता

मरघट के धुएँ से
काला हुआ लगता था
जीवन का उजाला

हस्तिनापुर पहुँचे थे पाण्डव
विजेता बन
खण्डहर - सी उदासी ने
कण्ठरुद्ध सिसकी से
स्वागत किया

बचे - खुचे सैनिक
अपाहिज थे
विधवाओं की संख्या
सधवाओं से अधिक थी

विरवाहीन पृथ्वी - सा
बच्चों से खाली था
कुरुओं का राजभवन
पहुँचे थे नृपति नए
आरती तक सजी नहीं
धृतराष्ट्र मिले
विगलित
विक्षेपग्रस्त

सौ पुत्रों की जननी को
देख कर निपूती

युधिष्ठिर को लगता
मस्तक पर मुकुट नहीं
बूँद-बूँद चूता
स्वजनों का रक्तघट
सोचते थे आज वे
आहत स्तब्ध-मन
"एक सौ पाँच
राजकुँवर
किलकते थे जहाँ
क्या यही
वह राजभवन ?"

गांधारी के प्रश्नों के
अपने ही उत्तर
तुम्हें औपचारिक लगते
उचित और अनुचित के
जटिल प्रश्न
और जटिल लगते
माथे पर चढ़ाया
हतचेतन-सी माता का शाप
क्षमा किंतु माँगी नहीं

कडुआए थे चेहरे
अर्जुन और भीम के
हतचेतन-से खड़े वहाँ
नकुल सहदेव थे

श्रमिका की संतति
विदुर अकेले
रक्षिता का बेटा
युयुत्सु भी अकेला
विभाजित व्यक्तित्व के
दोनों ये द्वीप
सत्ता के सिंधु में
युधिष्ठिर
परितापग्रस्त सदाशय
उनके भरोसे
सौंपा उन्हें

उलझे संदर्भों को
संभव सुव्यवस्था दी
क्लांत मन विदा हुए
दायित्वों ने पुकारा
द्वारिका गए
महाभारत का शेष समर
प्राण - प्राण जीते हुए

●

द्वारिका में
सेना थी
स्नेही थे
स्वजनों की भीड़ थी
लगता था किंतु तुम्हें
आत्मा के विरुद्ध
देह के संबंध सब व्यर्थ हैं

सोचते थे
"टूटेंगे जब कभी
मर्यादा के बंध
अणु-अणु में टकराते
शक्ति के प्रवाह से
मचेगा महारण
नए कुरुक्षेत्र
रक्त से नहाएगा
भविष्य फिर
मानव का"

डसता था अकेलापन
घिरते थे प्रश्नों के घेरे में

चाहते थे करना जो
नहीं हुआ
स्थितिग्रस्त हुआ वह
करना पड़ा जिसे विवश
लेना पड़ा
शिखण्डी और
मिथ्या का आश्रय
भीष्म और
द्रोण के विरुद्ध तुम्हें

प्रतिरोधहीन रहना पड़ा
सात्यकी ने जब किया

भूमिसात भूरिश्रवा पर
आक्रमण

विजयी हुए पाण्डव
तुम्हारे ही कौशल से
नैतिक प्रतिमानों के दर्पण में
अपनी ही आँखों में
अपराधी तुम लगते
सोचते
उद्विग्न - मन
"घटोत्कच का जीवन क्या
शतरंज की गोटी था ?
वह भी तो पाण्डव था ?"

पक्षधरता के हाथों कृष्ण
गिरवी विवेक
या
टेढ़ी चाल चलने को
विवश प्रतिबद्धता ?
सोने नहीं देता था स्मरण
दुःशासन का रक्त - पीते भीम का
कितने थे विवश तुम
टाल नहीं पाए
दुष्कृत्य जो
मनुजोचित था नहीं
प्रतिज्ञा या निष्ठा के नाम पर ?

युद्ध के विरुद्ध
अनिवार्य हुए युद्ध की
परिणति पर
उत्सव या
शोक था मनाना तुम्हें ?

चाहते यदि तुम
पड़ता नहीं शिथिल क्या
उन्माद वह क्रोध का ?
आवेश वह प्रतिशोध का ?
आगे भी करना क्या होगा वही
करना जो पड़ा
कुरुक्षेत्र में ?

विचारों के व्यूह
धँसे
और फँसे तुम बार-बार
किंतु
खोज पाए क्या
राह नई ?

●

महाभारत के युद्ध से
लौटे हुए महारथी
अहंमस्त द्वन्द्वों में
उलझे ही रहते
सत्ता के भागीदार
दायित्वहीन सुरामत्त
टकराते ही रहते
रौंदते ही रहते वे शिष्टता
बौद्धिक समुदाय का
करते उपहास थे
साम्ब का गर्भिणी वेश
अपमान था
ऋषिगण के ज्ञान का

उमड़ी थी ज्वार - सी
प्रभास में
वैभव की मदांधता
अपनों के खून में
घरौंदे - सी वह गई
यदुकुल की सत्ता

पुत्र और पौत्र
सचिव और सेनापति
सभासद
स्वजन सभी
लड़े
और निहत हुए

अपनों का नाश
तुम चाहते थे रोकना
किंतु असमर्थ हुए

कुरुकुल का अन्तर्दाह
यदुकुल में दहक उठा
तुम्हारे भी हाथ उठे दण्ड को
कोई भी अहंकारी बचा नहीं
संबंधों की आड़ ले
सहन तुम्हें हुआ नहीं
उलंघन मर्यादा का

कैसी थी नियति क्रूर
साक्षी तुम स्वयं कृष्ण
प्रभास के प्रलय में ?

स्मृति में बार-बार गूँजती-सी लगती थी
गांधारी की आर्तध्वनि
पहुँचे उद्विग्न क्लांत
वृक्ष की छाया में
पाँव पर पाँव धरे
अकेले अब पड़े तुम

सजे-सँवरे नहीं रह गए थे घुँघराले केश
मस्तक से सरक कर दूर
छिटका पड़ा था मोर-मुकुट
वदन से अलग रक्ताक्त धरती पर पड़ा था उत्तरीय
माथे से चू रहा था
धार-धार पसीना
चेहरे पर वैराग्य नहीं
विरक्ति का विस्फोट था
रोम-रोम फूटती थी
अपनों के हाथों अपनों की हत्या से
उपजी जुगुप्सा

हवा में न थी
बाँसुरी की टेर
न था घोष

पांचजन्य का
चक्र और गाण्डीव
अब
स्मृति के अंग थे

हरा नहीं बचा शेष
कुछ भी प्रभास में
खून-खून डूबा
परिवेश वहाँ

अभिशप्त थे
जीवित वसुदेव
देखने को दृश्य
क्षयमान यादव वंश का

समाधिस्थ हो
सिंधु के किनारे
विसर्जन किया प्राणों का
बलदाऊ ने
सत्ता के क्रूर-कुटिल
द्वन्द्वों से ऊब कर

तुमने किया
महायात्रा का आत्मवरण
व्याधे के तीर से
सोचा नहीं संभव उपचार तक

निःसंग पड़े जीवन का
कैसा यह अंत था ?

बिल्कुल नहीं जागी थी
कसक क्या
यशोदा के नेह और
राधा के प्यार की ?
क्या सचमुच नहीं कौंधी थी
स्मृति में
चक्र की खरोंच से कटी हुई उँगली पर
आँचल की पट्टी बाँधती हुई
द्रुपदसुता ?

झरता हुआ देख कर
कदम्ब का पत्ता हरा
सिहरता था
स्नेह - शिथिल
तुम्हारा मन
अपने ही प्रति वह
पत्थर क्यों हो गया ?

बुझती हुई आँखों में
उड़ते और भगते दिखे
खाण्डव की लपटों से आतंकित हो
वनपाखी और वन्यजन्तु
उफनती हुई लहरों में

लुढ़कते और बहते दिखे
शिखर हिमालय के
खण्डों में बँटते और
होते हुए लुप्त दिखे
अम्बर में इन्द्रधनुप
पता नहीं
जरा नाम व्याध वह कौन था ?

कोई शिकारी
या
जंगल में भटका हुआ
प्रतिशोध से प्रतिबद्ध
सैनिक एक
परास्त शत्रुपक्ष का
अथवा था
विक्षुब्ध वह नागरिक
युद्ध में मारे गए
पिता और भाई थे जिसके
अथवा था
महाकाल स्वयं ही
एक महत जीवन की परिणति का
निमित्त मात्र
प्रतीक पुरुष ?

प्रभास के पड़ाव पर
रुकी क्या
मथुरा से शुरू हुई
चिरंतन की यात्रा ?

अंत हुआ देह का
किंतु कृष्ण
रुँधी क्या
गीता से जुड़ी हुई
अक्षय जिजीविषा ?

तुम से भी छूटा
अनुत्तरित ही प्रश्न यह
"जेल और जंगल के पंजों से
मुक्त कब होगी मनुष्यता ?"



उत्तर पक्ष

घूँट - घूँट पीता
आतंक और घृणा
रोम - रोम
विप से विंधा
फूलों का रंग
आँखों में
न खिलने का
समय यह !

बस्तियों को
खण्डहरों में
उपवनों को
श्मशानों में
किलकारियों को
सिसकियों में बदलता
पंखजले पाखियों पर
ओले
गदराई फसलों पर
आग बरसाता
प्यास और पानी के बीच
नरभक्षी दरिंदे - सा गुर्राता
समय यह !

अशक्तों के विरुद्ध
शक्ति के उन्माद से ग्रस्त
काल के विस्तार में मथती
गहनतम समस्या कृष्ण !
"निचुड़ता ही रहेगा
नरता का रक्त क्या
पशुता के पक्ष में ?
हारती ही रहेगी क्या
शोषण के विरुद्ध युद्ध
मनुष्य की संवेदना ?"

रेत के बवण्डर में
खोया है दिशाज्ञान

उत्तर पक्ष

घूँट - घूँट पीता
आतंक और घृणा
रोम - रोम
विष से बिंधा
फूलों का रंग
आँखों में
न खिलने का
समय यह !

वस्तियों को
खण्डहरों में
उपवनों को
श्मशानों में
किलकारियों को
सिसकियों में वदलता
पंखजले पाखियों पर
ओले
गदराई फसलों पर
आग वरसाता
प्यास और पानी के बीच
नरभक्षी दरिंदे-सा गुर्राता
समय यह !

अशक्तों के विरुद्ध
शक्ति के उन्माद से मस्त
काल के विस्तार में मथती
गहनतम समस्या कृष्ण !
"निचुड़ता ही रहेगा
नरता का रक्त क्या
पशुता के पक्ष में ?
हारती ही रहेगी क्या
शोषण के विरुद्ध युद्ध
मनुष्य की संवेदना ?"

रेत के ववण्डर में
खोया है दिशाज्ञान

चौराहे के केन्द्र से
माँगते
संशयग्रस्त दलित
आज समाधान
"भारत के भूमिपुत्र भूमिहीन क्यों रहें ?
अन्न दें, वस्त्र दें,
सब को सम्पन्न करें
निर्वसन ताप सहें
स्वयं क्यों विपन्न मरें ?"

"शोषण या मृत्यु ही
शेष जब विकल्प हों
उतारू हो
व्यवस्था जब
उत्पीड़न के पक्ष में
कवच पहन
शास्त्रों और धर्म का
बोलो कृष्ण
श्रमिक जन क्या करें ?
शास्त्रों के विरुद्ध वे
कब तक नहीं
शस्त्र गहें ?
प्रतिशोध क्यों ले नहीं
एकलव्य की परम्परा ?"

"होती रहें वस्त्रहीन
जलती रहें आग में

धुआँ-धुआँ घुटें
मर-मर कर देवी हों
साँस-साँस खपें
जीवन भर दासी हों
दो ही विकल्पों में
भटकती रहें
अब भी क्या
द्रौपदी की बेटियाँ ?
ऐसी व्यवस्था क्यों
अब भी असंभव रहे
उन्नतसिर जीएँ और
पाएँ वे
बांधवी की अस्मिता ?"

"बहता ही रहे क्यों
दूध फूल
पत्थरों पर नालियों में
जलता ही रहे क्यों
अम्बार यज्ञकुण्ड में
अन्न और घृत का ?
तरसता ही रहे क्यों
शैशव इस देश का
पोषण के अभाव में ?
भहरते और उठते रहें
मस्जिद और मंदिर
गिरिजा गुरुद्वारा क्यों ?
मरते ही रहें क्यों
लोग यहाँ
ठंड और धूप से ?"

"कब तक और
बोलो कृष्ण
होती रहेगी बलि
मृतकों की पूजा में
भारत की
जीवित मनुष्यता ?"

निरुत्तर हैं
मंदिर और मस्जिद
गिरिजा गुरुद्वारा
टकराती है आज यहाँ
प्रगति से
परम्परा
व्यवस्था के बनैले हाथ
पहने हैं
धर्म के विषाक्त हुए बघनखे

बुनते हैं
बिके हुए बौद्धिक जन
लोक के विरुद्ध खड़े
शास्त्रों के पक्ष में
नित्य नए तर्कजाल
बाँधे ही रखना वे चाहते
मानवता के पंखों में
जीर्ण-शीर्ण कर्मकाण्डों के पत्थर

इतराता है
जड़ताग्रस्त सत्ताकेन्द्र
शस्त्रों की ताकत पर
अक्षौहिणियों का अहंकार
उन्मत्त उसे करता है
परिवर्तन के पन्नों पर
महाकाल हँसता है



अंधड़ के झोंकों से
पलटता है क्षितिजपट
उभरते हो दृश्य पर
खोलते हुए गुहाद्वार
कृष्ण तुम
सृजन और सुन्दर के पक्ष में
गढ़ते हुए लोकशास्त्र
बाँसुरी की टेर से
पांचजन्यघोष तक

सुन्दर का स्रोत है
सृजनरत वसुंधरा
असुन्दर है
श्रम से विच्छिन्नता

गिनती की ताकत से
आतंकित तुम हुए नहीं
गुणों की प्रतिष्ठा में
पीछे कभी मुड़े नहीं

जीवनपर्यंत तुम बने रहे
शत्रु
आततायी के
सखा
अकिंचन के
मोड़ते रहे पार्थरथ
सुरक्षित दिशाओं में

रचते रहे सांध्यदृश्य
टहकते अपराह्न में
साधते रहे प्रकृति को
बन्धुओं के पक्ष में



अस्तित्व के प्रवाह में
घिसती और बहती रहीं
संस्कारों की रूढ़ियाँ
शिथिल थे हो रहे
रक्तसंबंधों के आग्रह

खून और आँसू से
गीली हुई धरती पर
मलाहिन के बेटे ने
चिंतन को जोड़ा परिश्रम से
शब्द-शब्द सूत्रों में बद्ध किया
यात्रा का सिलसिला

सत्ता और स्वत्वों के द्वन्द्वों में
रचना प्रतिबद्ध हुई
न्याय के संकल्प से

मेधा थी व्यास की
उर्ध्वगामी चिंतन
कविता की काया में
रूपायित दर्शन

वर्णाश्रम की जकड़न से
व्यास नहीं मुक्त थे
सोचने के लक्ष्य किंतु
उन के मनुष्य थे

चेतना की मथनी से
मथना था
सर्वग्रासी समय-सिंधु
हालाहल और अमृत को
अलग-अलग करना था

टकराना था
प्रतिभा को
सत्ता की प्रभुता और
भक्तों की लघुता से

भविष्य के विकल्प
भाग्य या
पलायन नहीं रह गए
मानवीय निष्ठा की
लगातार चोटों से
दुविधा के दुर्ग कई
ढह गए

संशयग्रस्त अर्जुन को
संबोधित
उद्बोधन
संघर्ष की इयत्ता
द्वन्द्वहीन स्थिति में
पत्ता नहीं हिलता

"जीवन का सत्य
मरण नहीं, यात्रा
यात्रा का तिरस्कार
नरता से हटना
पशुता से डरना

छीनता जो स्वत्व
कभी नहीं स्वजन वह
रौंदता जो अस्मिता
कभी नहीं स्वजन वह

"जगो
और लड़ो पार्थ !
जीवन को गाली मत बनने दो
गर्हित के पक्ष में
ताली मत बजने दो
होता नहीं नष्ट कुछ
रूप सिर्फ बदलता
जीवन का सिलसिला
लगातार चलता

"सत्य की चुनौती
रुद्ध नहीं होना
तप कर चमकता जो
सिर्फ वही सोना

मरने से पहले तुम
बार-बार मरो मत
कर्म के उपासक बनो
परिणति से डरो मत
वरण करो
न्यायसिद्ध पक्ष तुम
ओझल मत होने दो
मानवता का लक्ष्य तुम

"शस्त्रों और सेना के स्तर पर
सुविधा और साधन के स्तर पर
संभव है
शत्रु ही समृद्ध हो
निष्ठा के स्तर पर किंतु सदा
आत्मक्षीण होता है शोषण का पक्षधर
संशय में रहता और
बुरी मौत मरता है

"निर्मम यह युद्ध लड़ो
शोषितों के पक्ष में"

आत्मा की आँखें खोल
खिलाते हुए

सहस्रदल हृतकमल
धैर्य दिया
शौर्य दिया
साहस का संबल दिया
जाग्रत प्रबुद्ध किया
ग्लानिग्रस्त पार्थ को
विजयी हुए पाण्डव
छिने गए स्वत्वों का पथ ले
नरता को समर्पित
तुम्हारे नेतृत्व में
दूहा था तुमने कृष्ण
आत्मा का गीत नया
देह के यथार्थ और
सत्य के सौंदर्य से

मोहग्रस्त सखा
या
आसक्तिग्रस्त
स्वजन नहीं
कर्मनिष्ठ साधक
सत्यनिष्ठ चिंतक
पूर्णकाम पूर्णपुरुष
लोकोत्तर नहीं
लोकार्पित
पार्थसखा
महालोकनायक
ओ !



(प्रथम फ्लैप का शेषांश)

वाली चुनौतियों को लगातार व्याख्यायित करने के क्रम में परम्परा को तराशते हुए मिथकों की परतों को उधेड़ने तक का खतरा उठाने में नहीं हिचकिचाते। मानव-नियति के प्रश्न को ठोस सामाजिक स्थितियों और मनुष्य की संकल्प-चेतना से संयुक्त करके अभिव्यक्त करने का प्रयत्न पाषाण की रचना में बार-बार प्रतिफलित होता है। उनकी यह रचना निश्चित तौर पर अपने समय की हलचलों, यथार्थ की परतों और ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न बोध-पद्धतियों को अपने में समाए हुए है, जिससे सामूहिक आत्म-संघर्ष को भी जुबान मिलती है। समकालीन यथार्थ का कठोर दबाव प्रस्तुत रचना के कथ्य और सम्पूर्ण रचना-विधान पर दिखाई देता है।

विश्वास है कि आधुनिक कृष्ण-काव्य की परम्परा में एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में जुड़ रही यह रचना अपने पाठकों को, फैलाए जा रहे वैचारिक धुंध को चीर पाने में काफी दूर तक सार्थक मदद दे पाएगी।

महेश जायसवाल